नागरिकी

(प्लातोन की पोलितीया का हिन्दी अनुवाद)

(Hindi Translation of Plato's Republic)

अनुवादक

राजेन्द्र स्वरूप भटनागर

भारतीय दर्शन अनुसंधान परिषद्
नई दिल्ली

DK PRINTWORLD
भारतीय परंपराओं के प्रकाशक
नई दिल्ली

Cataloging in Publication Data — DK
[Courtesy: D.K. Agencies (P) Ltd. <docinfo@dkagencies.com>]

Plato.
[Republic. Hindi]
Nāgarikī : Plātona kī Politīyā kā Hindī anuvāda = Hindi translation of Plato's Republic / anuvādaka, Rājendra Svarūpa Bhaṭanāgara.
p. cm.
In Hindi.
Translation of Greek Politeia.
Includes index.
ISBN 13: 9788124607350

1. Political science — Early works to 1800. 2. Utopias — Early works to 1800. 3. Justice — Early works to 1800. I. Bhatnagar, R.S., 1938- II. Title.

DDC 321.07 23

ISBN 13: 978-81-246-0735-0

प्रथम प्रकाशन वर्ष : 2014 मुद्रण : 550 प्रतियाँ
© आर०एस० भटनागर

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण, या किसी भी विधि (जैसे इलेक्ट्रोनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुन: प्राप्त किया जा सकता हो, कॉपीराइट धारक एवं प्रकाशकों की पूर्वलिखित अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है।

इस पुस्तक में जो अभिमत व्यक्त हुआ है वह पूर्णतया अनुवादक का अपना है। इसके प्रकाशन में अनुवादक ने इस बात की पूर्ण संभव सावधानी रखी है कि इसकी सामग्री का कोई अंश, किसी भी रूप में वर्तमान कॉपीराइट अथवा किसी भी व्यक्ति की बौद्धिक सम्पत्ति के अधिकार का हनन नहीं करे। यदि अनुवादक के द्वारा अनवधान में कोई ऐसा अंश प्रकाशित हो गया हो या उसकी अनभिज्ञता के कारण अनदेखा रह गया हो, तो सम्बन्धित जन इसकी जानकारी "भारतीय दर्शन अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली" तथा सह-प्रकाशक "डी०के० प्रिन्टवर्ल्ड (प्रा०) लि०, नई दिल्ली" को लिखित रूप में दें, जिससे अगले संस्करण में उक्त अंश को हटाया जा सके।

प्रकाशक:
भारतीय दर्शन अनुसंधान परिषद्
दर्शन भवन, 36 तुगलकाबाद इन्स्टियूशनल एरिया
महरौली-बदरपुर रोड, नई दिल्ली - 110 062

एवं

डी०के० प्रिंटवर्ल्ड (प्रा०) लि०
पंजीकृत कार्यालय : वेदश्री, एफ-395, सुदर्शन पार्क
(मेट्रो स्टेशन : रमेश नगर), नई दिल्ली – 110 015
दूरभाष : (011) 2545 3975, 2546 6019, फैक्स : (011) 2546 5926
ई-मेल : indology@dkprintworld.com, वेब : www.dkprintworld.com

मुद्रक : डी०के० प्रिंटवर्ल्ड प्रा०लि०, नई दिल्ली

भूमिका

यास्क की महत्त्वपूर्ण कृति निरुक्त में कोत्स ऋषि के मत का उल्लेख है। इस मत के अनुसार यदि किसी वाक्य को दूसरे प्रकार से न कहा जा सके तो वह वाक्य सार्थक नहीं हो सकता। एक प्रकार से अनुवाद की अवधारणा इस विचार का व्यावहारिक अनुमोदन है। एक वाक्य यदि दूसरे वाक्य के रूप में अनुदित होता है, तो वह दूसरा वाक्य मूल वाक्य के अर्थ की एक अन्य रूप में अभिव्यक्ति है। इस धारणा के आलोक में किसी ग्रन्थ को जब किसी दूसरी भाषा में अनूदित किया जाए, तो वह मूल ग्रन्थ को समझने का एक उपाय है।

प्लातोन (प्लेटो) की कृति पोलितीया (रिपब्लिक) को हिन्दी में अनूदित करने का यह प्रयास इसी धारणा से प्रेरित है। पोलितीया के हिन्दी में दो तथा उर्दू में एक अनुवाद पहले ही हो चुके हैं, परन्तु ये अनुवाद दुष्प्राप्य हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी ग्रन्थ का अनुवाद फिर हो सकता है। अंग्रेज़ी भाषा में तो अनेक अनुवाद उपलब्ध हैं। इनमें हाल ही में आर.ई. ऐलेन का एक नया अनुवाद प्रकाशित हुआ है। भारत की अन्य भाषाओं में अथवा अन्य विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुए हों, तो मैं उनके विषय में अनभिज्ञ हूँ।

अच्छी बात होती यदि मेरे लिए यह संभव होता कि अनुवाद ग्रन्थ की मूल भाषा से करता, परन्तु मूल भाषा में अच्छी पैठ न होने के कारण मेरे लिए यह संभव नहीं हुआ। मैंने बैन्जामिन जौवेट के अंग्रेज़ी अनुवाद को आधार बनाया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि पोलितीया के अनुवाद के द्वारा मैं प्लातोन की सद्गुण-सम्बन्धी अवधारणा को भली-भाँति ग्रहण कर पाऊंगा। पोलितीया में सद्गुण का विवेचन व्यक्ति तथा समाज या नगर दोनों के सन्दर्भ में हुआ है। प्लातोन के अन्य संवादों की तुलना में यहाँ सद्गुण-विवेचन अधिक विशद रूप में हुआ है।

यह एक सुखद तथ्य है कि यूनान के प्राचीन विचारकों तथा कवियों की कृतियाँ इंटरनैट पर उपलब्ध हैं। यदि यूनानी भाषा की वर्णमाला का, उच्चारण के नियमों का तथा व्याकरण का प्रारंभिक परिचय हो, तो व्यक्तिवाचक संज्ञाओं को लगभग उसी रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, जैसा संभवतया प्लातोन के समय प्रचलित रहा होगा। इस अनुवाद में ऐसा ही प्रयास है।

यूनान के लिए अंग्रेज़ी भाषा-भाषी 'ग्रीस' शब्द का प्रयोग करते हैं परन्तु प्लातोन जब अपने देश तथा देशवासियों की बात करता है तो वह यूनान के लिए 'हैल्लास' तथा देशवासियों को 'हैलेनी' संज्ञाओं से अभिहित करता है। रोमनों ने यूनान के लिए लेटिन 'ग्रीसिया' शब्द का प्रयोग किया जो अंग्रेज़ी में 'ग्रीस' के रूप में प्रसिद्ध हुआ। आज के ग्रीसवासी अपने राज्य को 'हैलिनिकी दिमोक्रातिया' बोलते हैं। यह जिज्ञासा होती है कि 'ग्रीस' संज्ञा के पूर्व, पूर्वीय देशों में 'यूनान' एवं 'यवन' शब्दों का प्रचलन कैसे आरम्भ हुआ। होमेरोस (होमर) की आलोचना करते समय प्लातोन ने थालेस की चर्चा की है। उसका मानना था कि होमेरोस की तुलना में 'हैल्लास' को थालेस का बड़ा योगदान रहा है। थालेस प्लातोन के काफ़ी पहले (640-547 ई.पू. में) हुआ था। वह मिलेतोस का निवासी था। वह अपनी वैज्ञानिक दृष्टि तथा सूझ-बूझ के लिए प्रख्यात था। वस्तुतः आस-पास का क्षेत्र ईयोनिया कहलाता था और मिलेतोस इसी क्षेत्र में एक समृद्ध नगर था। आधुनिक तुर्की में यह क्षेत्र उसके पश्चिमी तट के निकट है। ऐसा प्रतीत होता है कि ईयोनिया तथा उसके दक्षिण अथवा पूर्व के देशों के बीच व्यापार एवं पर्यटन के कारण लोगों का आना-जाना लगा रहा होगा। ईयोनिया की ख्याति के कारण आसपास के भू-भाग जिसे 'हैल्लास' कहते थे, लोग उसे भी ईयोनिया से जोड़कर देखते होंगे और इस प्रकार हीब्रू तथा संस्कृत में ईयोनिया ही को 'यूनान' और उसके निवासी 'यवनों' के रूप में जाना जाता होगा।

अनुवाद आरम्भ करने के पूर्व यह जिज्ञासा हुई कि पोलितीया शब्द का अनुवाद अंग्रेज़ी भाषा में रिपब्लिक क्यों किया गया जबकि प्लातोन ने जनतन्त्र या लोकतन्त्र को आलोचना का विषय बनाया? कहा जाता है कि रिपब्लिक लैटिन भाषा के 'रैस पुब्लिका' पर आश्रित है। रैस पुब्लिका का अर्थ 'नगर सम्बन्धी' माना जाता है। वहाँ यह शब्द नगर या राज्य की किसी विशिष्ट व्यवस्था को इंगित नहीं करता। अंग्रेज़ी में, जब से अनुवाद आरम्भ हुआ है तब से ही 'रिपब्लिक' को जनतन्त्र के किसी रूप में ग्रहण किया जाता रहा है। अतः यह तथ्य अटपटा लगता है कि पोलितीया का अनुवाद रिपब्लिक के रूप में किया जाए। इस सन्दर्भ में, दैस्मौन्द ली के मत को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा। अपने अनुवाद द रिपब्लिक के 'अनुवाद के परिचय' में पृष्ठ 31 पर वे लिखते हैं –

> आधुनिक पाठक के लिए रिपब्लिक शीर्षक दोहरे रूप में भ्रामक है। पहले तो इससे यह लगता है कि मानो प्लेटो रिपब्लिक के विषय में उसके आधुनिक अर्थ में लिख रहा है, अर्थात् एक विशेष प्रकार के शासन-तन्त्र के विषय में। वस्तुतः शीर्षक के रूप में जो ग्रीक शब्द आया है, उसका अर्थ 'संविधान', 'राज्य' अथवा 'समाज' कुछ भी हो सकता है। लेटिन अनुवाद 'रैस्पुब्लिका' है। यह शब्द मूलतः कुछ उसी प्रकार का अर्थ है (जैसा ग्रीक में), परन्तु बाद में

> उसका प्रयोग अधिक संकुचित अर्थ अर्थात् एक विशेष प्रकार का संविधान, के रूप में होने लगा। यही अर्थ अंग्रेज़ी अनुवाद रिपब्लिक से लिया जाता है। वस्तुतः प्लेटो समाज अथवा राज्य के विषय में लिख रहा था। दोषपूर्ण अनुवाद अब रूढ़ हो गया है। उसे बदलना पांडित्य प्रदर्शन होगा। . . .
>
> – द्वितीय पुनर्लिखित संस्करण, पेनुइन बुक्स (1974)
> अंग्रेज़ी से अनु. द्वारा अनूदित।

अनेक अन्य अनुवादकों ने शीर्षक की इस समस्या के विषय में कोई संकेत नहीं दिया है। ली ने जिस पाण्डित्य के निराकरण का उल्लेख करते हुए रूढ़ि को स्वीकार करने की बात की है वह मुझे ठीक नहीं लगी। रूढ़ि के कारण दोष को जारी रखना सही बात नहीं है। दूसरे यह बात सही होते हुए भी कि पोलितीया शब्द समाज, राज्य, नगर अथवा संविधान की ओर इंगित करता है तथा पुस्तक का एक समस्त खण्ड इसी विषय को लेकर है, प्लातोन का मुख्य प्रयास सद्गुण के रूप में न्याय के स्वरूप तथा उसके औचित्य को बताना प्रतीत होता है। इस बात को बढ़ाने के पूर्व मैं हैलेनी व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के सन्दर्भ में कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

जो संज्ञाएँ अंग्रेज़ी में प्रचलित हैं, उन पर लेटिन भाषा का प्रभाव है। पोलितीया का रिपब्लिक के रूप में अनुवाद तो अर्थ के दोष को प्रदर्शित करता है, परन्तु व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के उच्चारण में भेद हुआ है। हिन्दी तथा हैलेनी को निकट तथा अपरोक्ष संबंध में देखने के लोभ के कारण, जहाँ तक संभव हुआ है, व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ हैलेनी रूप में रखने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए, लेटिन के प्रभाव में, हैलेनी भाषा में जो संज्ञाएँ 'ओस' में समाप्त होती थीं, वे अंग्रेज़ी में 'उस' अथवा 'अस' में अन्त होने लगीं। जैसे 'थ्रासिमाकोस', 'थ्रासिमाकुस' या 'थ्रासीमाकस' हो गया। इसी प्रकार हैलेनी कप्पा (κ) लेटिन में सी (c) में बदल गया। फलतः 'कैफ़ालोस', 'सिफ़ैलस' हो गया। प्रस्तुत अनुवाद में जहाँ तक बन पड़ा है, संज्ञाओं को हैलेनी रूप में रखने का प्रयास हुआ है। इसके आधार में हैलेनियों को हैलेनी रूप में देखने का लोभ रहा है, यद्यपि इस बात का खेद है कि यह प्रयास जो अर्हता चाहता है वह अनुवादक में नहीं रही। विद्वद् पाठकों से इस धृष्टता के लिए क्षमा-याचना के अतिरिक्त मुझे कुछ और नहीं सूझ रहा है।

'रिपब्लिक' संज्ञा के स्थान पर मैंने हैलेनी 'पोलितीया' का ही वरण किया है। कोष्ठक में 'नागरिकी' लिखकर अनुवाद की रक्षा की है।

एक और निवेदन हैलेनी 'पोलिस' शब्द के विषय में करना है। यह शब्द 'नगर', 'राज्य' तथा 'समाज' तीनों अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'अन्थ्रपोस पोलितिकोस' का

अनुवाद बहुधा 'सामाजिक प्राणी' के रूप में किया जाता है। एक प्रकार से 'पोलिस' की अनेकार्थकता हैलेनी समाज के नगर-राज्य के रूप की ओर इंगित करती है। जौवेट के अनुवाद में इस शब्द का अनुवाद कहीं 'सिटी' (नगर) के रूप में हुआ और कहीं 'स्टेट' (राज्य) के रूप में। प्रस्तुत अनुवाद में सर्वत्र 'नगर' शब्द ही रखा गया है। ऐलेन के अनुवाद में भी 'सिटी' शब्द ही सर्वत्र आया है।

× × ×

प्लातोन की अनेक कृतियों की भाँति पोलितीया भी संवाद के रूप में लिखा गया है। संवाद में प्रश्नोत्तर की प्रणाली अपनाई गई है। कहा जाता है कि प्रश्नों के रूप में ही, सौक्रातेस, जो मुख्य वक्ता है, विचार के स्वरूप तथा उसकी दिशा को निर्धारित करता था। उसके प्रश्न इस प्रकार के होते थे कि उत्तर देने वाला स्वयं अपने विचारों का विश्लेषण, उनकी सार्थकता अथवा उनकी संगति-असंगति की ओर बढ़ता था। यह एक विलक्षण तथ्य है कि प्लातोन स्वयं को संवाद में किसी पात्र के रूप में न रखकर अपने गुरु सौक्रातेस को ही विशेष स्थान देता है। यह बात अलग है कि सौक्रातेस के मुख में वह अपने ही विचारों को स्थान दे रहा है। इस संवाद के कुछ अन्य वक्ता हैं – कैफ़ालोस, ग्लौकौन, पौलैमार्कोस, अदेमान्तोस, थ्रासिमाकोस, क्लेतोफ़ौन आदि।

सामान्यतया पोलितीया का प्रमुख विषय राज्य अथवा नगर व्यवस्था माना जाता रहा है। बहुधा समझा जाता है कि इस संवाद में प्लातोन राज्य या नगर की एक आदर्श रूप-रेखा को अंकित करता है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि नगर अथवा राज्य का विवेचन यह दिखाने का एक मार्ग है कि न्याय क्या है, वह अन्याय से किस प्रकार भिन्न है, व्यक्ति तथा नगर के रूप में वह क्या भूमिका रखता है। न्याय शब्द 'दिके' शब्द का अनुवाद है। अंग्रेज़ी में 'दिके' 'जस्टिस' शब्द के रूप में अनूदित हुआ है। 'दिके' शब्द का प्रयोग अत्यन्त व्यापक है। 'रीति', 'उचित', 'न्याय', 'अभियोग', 'दण्ड' आदि जैसे इसके अनेक प्रयोग हैं। आजकल इसका प्रयोग न्यायालय के 'न्याय' के रूप में ही होता है। प्लातोन इसे एक सद्गुण (आरेति) के रूप में प्रयुक्त करता है। इसका प्रयोग चारित्रिक गुणों के समन्वयात्मक गठन के रूप में हुआ है। इस विचार के अनुकूल यह भी कहा जा सकता है कि न्याय पर विमर्श आदर्श चरित्र के गठन अथवा स्वरूप की दृष्टि से हुआ है। मानव स्वभाव के विभिन्न घटक जैसे क्षुधा, भावना (संवेग) तथा बुद्धि आदि जब सन्तुलित सामञ्जस्य में होते हैं तो वह अवस्था 'न्याय' की होती है। नगर-व्यवस्था में भी जब विभिन्न वर्गों में उपयुक्त सामञ्जस्यात्मक संबंध होता है, तब उस अवस्था को भी 'न्याय' कहा गया है।

प्लातोन की इस कृति का मुख्य विषय, जैसाकि पहले कहा गया है, सद्गुण अथवा न्याय माना जा सकता है। संवाद में अन्वेषण का स्वरूप कुछ इस प्रकार एवं क्रम से है। सर्वप्रथम 'न्याय' की परिभाषा प्रस्तुत करने का प्रयास होता है। इस परिभाषा की परीक्षा होती है। यह देखने का प्रयास होता है कि परिभाषा अव्याप्त अथवा अतिव्याप्त तो नहीं। अपवाद अथवा विपरीत दृष्टांत मिलने पर पुनः एक अन्य परिभाषा प्रस्तुत की जाती है, उसकी पुनः परीक्षा होती है। यह क्रम तब तक चलता है जब तक कि उपयुक्त एवं निर्विवाद परिभाषा प्राप्त नहीं हो जाती है।

प्रथम अध्याय में सर्वप्रथम यह परिभाषा प्रस्तुत की जाती है

जो जिसका देय है, वह उसे लौटाना उचित है या न्याय है। परन्तु ऐसी स्थिति आ सकती है या हो सकती है जब इस नियम का पालन दुष्परिणाम उत्पन्न करे। उदाहरणार्थ, यदि एक व्यक्ति दूसरे के पास कोई आयुध रखता है और बाद में विक्षिप्त अवस्था में वह उसे वापिस मांगता है, तब उस आयुध को, उसकी उस विक्षिप्त अवस्था में लौटाना उपयुक्त नहीं होगा।

पुनः एक दूसरी परिभाषा प्रस्तावित की जाती है

मित्रों के साथ भलाई तथा शत्रुओं की हानि करना ठीक होगा या न्याय होगा। परन्तु यह परिभाषा तब तक प्रयुक्त नहीं की जा सकती जब तक यह निश्चय नहीं हो जाए की मित्र मित्र जैसा नहीं, परन्तु सचमुच है, शत्रु शत्रु जैसा नहीं अपितु वास्तव में शत्रु है।

पुनः एक अन्य परिभाषा प्रस्तुत की जाती है

वही उचित अथवा न्याय है जो सबल के हित में है। शासक वर्ग जो समाज में सबल होता है, सदैव अपने हित के लिए नियम बनाता है, वो उनके पालन को ही न्याय मानता है। परन्तु यदि इस परिभाषा को स्वीकार करें तो यह तय करना होगा कि सही रूप में किसे शासक कहा जाए और सही रूप में हित से क्या आशय लिया जाए। यदि शासक वास्तव में शासक है, तब उसका हित उसका अपना संकुचित स्वार्थ नहीं हो सकता। वह शासक इसलिए है कि नगर की व्यवस्था को ठीक करे तथा जनहित में कार्य करे। इस अवस्था में यह कहना गलत होगा कि शासक स्वहित में नियम बनाता है। परन्तु थ्रासिमाकोस, जो तीसरी परिभाषा प्रस्तुत करता है, मानता है कि यह मानना ही मूर्खता है कि शासक जनहित के लिए नियम बनाता है। यथार्थ में शासक केवल अपना हित देखता है। आदर्श शासक की कल्पना कोरी कल्पना है। सुदीर्घ विवेचन के पश्चात् सौक्रातेस, थ्रासिमाकोस को शांत करने में सफल हो पाता है।

थ्रासिमाकोस तथा ग्लौकौन भिन्न स्थापनाएँ रख एक बहस को जन्म देते हैं। ग्लौकौन का प्रस्ताव है कि उचित तथा उत्कृष्ट जीवन ही जीने योग्य होता है। न्यायी का जीवन हितकर तथा सुखद होता है। इसके विरुद्ध थ्रासिमाकोस का मत था कि वस्तुतः अन्यायी का जीवन सुखद होता है। पुनः युक्तियुक्त विमर्श के फलस्वरूप सौक्रातेस यह दिखाने का प्रयास करता है कि केवल न्यायी का जीवन ही सही तथा सुखप्रद होता है। अन्यायी के जीवन में दुःख निहित होता है। अन्याय न्याय की तुलना में कभी भी लाभकारी या हितकर नहीं हो सकता।

सौक्रातेस यह सुझाव रखता है कि न्याय के मूल तथा न्याय एवं अन्याय के भेद को सही रूप में ग्रहण करने के लिए दो ऐसे चरित्रों की कल्पना की जाए जो पूर्ण न्यायी तथा पूर्ण अन्यायी हों। वस्तुतः न्याय की प्रकृति का प्रश्न एक गूढ़ प्रश्न है। इसके समाधान के लिए सौक्रातेस एक विशेष दृष्टि का प्रस्ताव रखता है।

न्याय एक ऐसा गुण है जो व्यक्ति के चरित्र से सम्बन्धित है। दूसरी ओर वह नगर की व्यवस्था की विशेषता की ओर संकेत करता है। स्पष्ट है कि नगर का आकार तथा उसका सन्दर्भ व्यक्ति के आकार तथा सन्दर्भ की तुलना में वृहद् होता है। अब यदि किसी सूक्ष्म वस्तु को किसी वृहद् आकार में देखें तो उसके गुण अधिक सुगम एवं स्पष्ट होंगे। अतः यदि न्याय को व्यक्ति चरित्र में समझने के स्थान पर नगर-व्यवस्था के सन्दर्भ में देखे तो वह अधिक स्पष्टता से समझा जा सकेगा। इस विचार में सबकी सहमति पर नगर-व्यवस्था की चर्चा आरम्भ होती है।

इस सोच में यह धारणा सन्निहित है कि व्यक्ति के चरित्र में तथा नगर की अवस्था में समरूपता है। जैसे व्यक्ति होंगे, समाज भी वैसा ही होगा। नगर-व्यवस्था के स्वरूप निर्धारण के साथ व्यक्ति स्वभाव का विवेचन भी साथ चलता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि कुछ विषयों की चर्चा बीच-बीच में हो चुकी है। इस प्रकार की चर्चा में आदर्श समाज या नगर के स्वरूप का विवेचन हो चुका है, जिसके उपर्युक्त विवरण में विशेष उल्लेख नहीं हुआ है। अब जो आगे विवेचन है वह अवांछनीय तन्त्रों से सम्बन्धित है। इन तन्त्रों में अल्प-तन्त्रीय, जन-तन्त्रीय तथा तानाशाही तन्त्रों के स्वरूप का विवेचन आता है।

इन तन्त्रों में न्याय के किसी-न-किसी घटक की अवेहलना एवं हानि होती है। इन घटकों में ज्ञान, साहस अथवा संयम को ले सकते हैं। इन्हीं में से किसी-न-किसी घटक का अभाव जैसे नगर में दुर्व्यवस्था का कारण होता है वैसे ही वह व्यक्ति के दुष्चरित्र का भी कारण होता है।

यदि हम एक अच्छी नगर अथवा समाज-व्यवस्था या तन्त्र चाहते हैं, तब चरित्रवान नागरिकों का होना अनिवार्य है। अच्छे नागरिक बनें, वे नगर की व्यवस्था

के विभिन्न पक्षों के दायित्व का सही तथा उत्कृष्ट निर्वहन कर सकें इसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उनमें से प्रत्येक आरम्भ से ऐसी शिक्षा तथा अनुशासन प्राप्त करे जो उन्हें उत्तरदायी तथा कुशल नागरिकों में विकसित कर सके। इस सन्दर्भ में सौक्रातेस विभिन्न विषयों पर विचार करते हुए प्रमुख दो विशिष्ट क्षेत्रों की ओर इंगित करता है। वे हैं – व्यायाम तथा संगीत। व्यायाम शरीर के उचित रक्षण, वृद्धि तथा सशक्त निर्माण का हेतु है जबकि संगीत मनस के प्रशिक्षण के लिए। व्यायाम शरीर को स्वस्थ तथा सुदृढ़ रखता है यह तो स्पष्ट है परन्तु मनस के प्रशिक्षण में संगीत की क्या भूमिका है? संगीत की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं – स्वर-सामञ्जस्य तथा लय। ये ऐसे तत्त्व हैं जो मनस के सन्तुलन तथा समरस विकास में योगदान के लिए आवश्यक हैं। ज्ञान तथा संयम इन्हीं तत्त्वों की ओर संकेत करते हैं। इस सन्दर्भ में सौक्रातेस ने एक आवश्यक बिन्दु की ओर ध्यान आकर्षित किया है। उसका कहना था कि संगीत से विलग व्यायाम पर बल दिया जाए तो वह साहस के स्थान पर दुःसाहस को जन्म दे सकता है। इसी प्रकार यदि व्यायाम की अवहेलना करते हुए केवल संगीत पर बल दिया जाए तो व्यक्ति में अनावश्यक कोमलता एवं नारियोचित गुण विकसित होंगे। दोनों में से किसी एक की अवहेलना असन्तुलित व्यक्तित्व के निर्माण का कारण होगी। अतः दोनों की ही सम्यक् शिक्षा दी जानी चाहिए।

संयम, सन्तुलन तथा सद्वृत्ति के विकास में ज्ञान की महती भूमिका है। सौक्रातेस की ज्ञान-सम्बन्धी चर्चा अत्यन्त विशिष्ट तथा महत्त्वपूर्ण है। उसका मानना था कि विशिष्ट दृश्य अथवा संवेद्य विषय एवं वस्तुओं का ज्ञान वास्तविक ज्ञान नहीं है। ऐसे विषयों का आकर्षण संयम में बाधक होता है। वह हमारी निम्न तथा अवांछनीय वृत्तियों को प्रश्रय देता है। यह इसलिए होता है कि हम आनी-जानी वस्तुओं को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देते हैं। यह समझना चाहिए कि ये विषय-वस्तुएँ जिनका हमें इन्द्रीय प्रत्यक्ष होता है, वास्तविक ज्ञान का विषय नहीं हैं। वस्तुतः ज्ञान का उपयुक्त विषय प्रत्यय अथवा सामान्य होता है, जो कि केवल बुद्धि द्वारा ग्राह्य है। विशेष वस्तुओं की तुलना में प्रत्यय स्थायी तथा अनश्वर होते हैं। इसलिए सही अर्थों में वे ही ज्ञान का विषय होते हैं। ये प्रत्यय ही वस्तुओं के ज्ञान को संभव बनाते हैं। एक दृष्टि से उन्हें तत्त्व के समकक्ष मान सकते हैं। इस प्रकार का इनका ज्ञान तत्त्व-ज्ञान कहा जा सकता है। इन प्रत्ययों में एक शीर्ष प्रत्यय होता है जिसे सौक्रातेस ने शिव (अगाथोस) का प्रत्यय कहा है। हमें उसका कुछ भान सूर्य से होता है। सर्वविदित है कि सूर्य प्रकाश तथा जीवन का स्रोत है। उसी प्रकार शिव का प्रत्यय जो वास्तविक है तथा ज्ञेय है उसे संभव बनाता है।

शिव के प्रत्यय एवं अन्य प्रत्ययों का बोध हमें उन प्रवृत्तियों से बचाता है जो हमें बुराईयों की ओर आकर्षित करती हैं। शिक्षा के स्वरूप तथा ज्ञान के महत्त्व को स्पष्ट

करने पर भी सौक्रातेस को यह प्रतीत होता है कि नगर के जो संरक्षक होंगे, जो उसकी व्यवस्था का संचालन करेंगे, उनके लिए कुछ और कड़े नियम होने चाहिए। इसका एक प्रमुख कारण यह था कि पदेन अधिकार तथा सत्ता बहुधा ऐसे प्रलोभनों को प्रभावी बना देते हैं जिनसे बचना अधिकारियों के लिए सहज नहीं होता। ऐसे प्रलोभनों के आधार में कहीं 'अहम्' तथा 'मम' सक्रिय होते हैं। 'मैं' और 'मेरा' ये सभी बुराईयों का मूल कहे जा सकते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में तो यह व्यवस्था के लिए और संकट उत्पन्न कर देते हैं। इनसे दूर रखने के प्रयास के अतिरिक्त एक और विचार यह था कि भविष्य में जो सन्तति उत्पन्न हो वह उत्तम तथा श्रेष्ठ हो। सौक्रातेस की सोच थी कि यह तभी संभव है जब सही समय पर श्रेष्ठ स्त्री-पुरुष संयुक्त हों। ममत्व तथा श्रेष्ठता की रक्षा के लिए सौक्रातेस ने संरक्षकों की जीवन-शैली का इस प्रकार निरूपण किया कि उसमें 'परिवार' की कल्पना प्रायः लुप्त हो गई। इस सन्दर्भ में उसने एक विलक्षण सुझाव प्रस्तुत किया। संरक्षकों को व्यक्तिगत परिवार बनाने, पत्नी तथा बच्चों को अपना बताने या मानने का अधिकार नहीं होगा, न ही वे व्यक्तिगत सम्पत्ति रख सकेंगे। स्त्री-पुरुष सामूहिक रूप में रहेंगे। बच्चे ये नहीं जान पाएंगे कि उनके माता-पिता कौन हैं, न ही माता-पिता को यह पता चलेगा कि उनके बच्चे कौन-से हैं। उनकी दैनिक आवश्यकताओं का भार नगर के अन्य वर्गों पर होगा। यह ध्यान देने की बात है कि शिक्षा तथा संरक्षण के कर्त्तव्यों की दृष्टि से सौक्रातेस ने स्त्री-पुरुषों के बीच कोई भेद स्वीकार नहीं किया। दोनों को समान शिक्षा मिलनी चाहिए। दोनों समान रूप में संरक्षक के कर्त्तव्यों का निर्वहन करेंगे।

सौक्रातेस को यह बोध था कि नगर की ऐसी आदर्श व्यवस्था न कभी थी और न कभी होगी। परन्तु इस आदर्श व्यवस्था में अन्तर्निहित जो प्रेरणा है वह सही मार्ग के प्रदर्शन में प्रकाश-स्तम्भ का काम कर सकती है।

इस पुस्तक में प्रसंगवश अनेक प्रश्न उठाए गए हैं, तथा उन पर विचार-मन्थन हुआ है, जैसे जीवन में धन या अर्थ का महत्त्व, कर्म के वरण की संभावना, आत्मा का अस्तित्व तथा स्वरूप एवं समाज में कला का स्थान। सुधी पाठकों के लिए पुस्तक का पारायण रोचक तथा विचारोत्तेजक हो इस कामना के साथ इस भूमिका को यहीं विराम दिया जाता है।

एक आवश्यक संकेत

पुस्तक के हाशिए में जो अंक संख्या है वह पुस्तक के मूल संस्करण से ली गई है। पोलितीया प्लातोन की अन्य कृतियों के मध्य कहीं रखे जाने के कारण यह संख्या '1' से आरम्भ न होकर '327' संख्या से आरम्भ होती है। लगभग सभी अनुवादकों ने इस संख्या-

क्रम को अपनाया है। प्रत्येक पृष्ठ कुछ परिच्छेदों में विभक्त है जो सामान्यतया 'क' से 'ङ' तक पाँच हैं। कहीं-कहीं उनकी यह संख्या पाँच से कम भी है। मूल पुस्तक में दो अध्यायों के बीच का पृष्ठ खाली छोड़ने के कारण बीच की कुछ संख्याएँ लुप्त भी हो गई हैं।